40

बारह-भावना

(कविवर पण्डितश्री मंगतरायजी)

(दोहा)

वन्दू श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणों बारह भावना, जग जीवन हित जान॥

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम रु लछमन, जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु सम्पत्ति सगरी।
कहाँ गये वह रङ्गमहल अरु, सुवरन की नगरी॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पाँडव वन को, अग्नि लगी तन में॥
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें, गुरु बारह भावन को॥

(अनित्यभावना)

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावे॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बहकर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता॥
ओस बूँद ज्यों गले धूप में, वा अन्जुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी॥
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥

(अशरणभावना)

काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा, भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में॥
मन्त्र यन्त्र सेना धन सम्पत्ति, राज-पाट छूटे।
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगत् में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥

(संसारभावना)

जनम मरण अरु जरा रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशू गति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥
भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पञ्चम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा॥

(एकत्वभावना)

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख-दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥
कमला[1] चलत न पेंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने-अपने सुख को रोवे, पिता-पुत्र दारा॥
ज्यों मेले में पन्थी जन मिली, नेह फिरे धरते।
ज्यों तरुवर पैं रैन बसेरा, पन्छी आ करते॥

१. पत्नी

कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस सङ्ग में, कोई न पर मारे॥

(अन्यत्वभावना)

मोहरूप मृग तृष्णा जल में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दोड़े थक-थक के॥
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन में बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरुष थके न तो लों, उद्यम सो चरना॥

(अशुचिभावना)

तू नित पोखे[१], यह सूखे, ज्यों धोवे त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली॥
मात पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
माँस हाड़ नश लहू राध की प्रगट व्याधि घेरी॥
काना पौण्डा पड़ा हाथ यह चूँसे तो रोवे।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे॥
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसतें होय, अपावन निश दिन मल जारी॥

(आस्रवभावना)

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निश दिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को॥

---

१. सम्हालना

पन मिथ्यात् योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पञ्च रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥
मोहभाव की ममता टारे, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते॥

(संवरभावना)

ज्यों मोरी[1] में डाट[2] लगावे, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहिं मन लाता॥
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दश विध धर्म परीषह बाईस, बारह भावना को॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्धि, भावन संवर पावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मँझधार पार जावै॥

(निर्जराभावना)

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म, निर्जरा हैं सोखन हारि॥
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावें, पाल विषै माली॥
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके, मिटे जगत् फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्ति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी॥

(लोकभावना)

लोक अलोक आकाश माँहि थिर, निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये, षट् द्रव्य सों मानों॥

---

१. नाली / छिद्र; २. ढक्कन

इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।
जीव रु पुद्गल नाचे यामैं, कर्म उपाधि है॥
पाप-पुण्य सों जीव जगत् में, नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर औरन के धरता॥
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥

(बोधिदुर्लभभावना)

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी॥
उत्तम देस सुसङ्गति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पञ्चम गुणठाना॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभ तैं दुर्लभ हैं चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भव में आवै॥

(धर्मभावना)

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे॥
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से जग में भटकावे॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री जिन की वाणी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सब को सुख दानी॥
इनका चितवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मङ्गत' इसी जतन तें इक दिन, भव सागर तरना॥